पर्युषण पर्व : एक विवेचन

प्रो. सागरमल जैन १९९८
जैन विद्या के आयाम खंड ५

Table of Contents

पर्युषण पर्व : एक विवेचन 1
प्राचीन आगम साहित्य पर्युषण पर्व का इतिहास 2
पर्युषण (पज्जोसवण) शब्द का अर्थ 3
पर्युषण के पर्यायवाची अन्य नाम 4
पज्जोसवणा (पर्युशमना) 4
पज्जोसवणा/परिवसणा (परिवसना) 4
पज्जूसण (पर्युषण) 4
वासावास (वर्षावास) 5
पागइया (प्राकृतिक) 5
पढमसमोसरण (प्रथम समवसरण) 5
परियायठवणा/परियायवत्थणा (पर्याय स्थापना) 5
ठवणा (स्थापना) 6
जेट्ठोवग्ग (ज्येष्ठावग्रह) 6
अष्टाह्निक पर्व 6
दशलक्षण पर्व 6
पर्युषण (संवत्सरी) पर्व कब और क्यों? 6
कल्पसूत्र एवं निशीथ का उल्लेख 6
निशीथचूर्णि का उल्लेख 6
जीवाभिगमसूत्र का उल्लेख 7
समवायाङ्गसूत्र का उल्लेख 7
निशीथ का उल्लेख 7
सांवत्सरिक प्रतिक्रमण तिथि भिन्न कैसे हो गई? 8
निशीथचूर्णि और कल्पसूत्र की टीकाओं में भाद्र शुक्ल चतुर्थी को संवत्सरी का उल्लेख 8
कालक आचार्य की कथा 9
पर्युषण/दशलक्षण और दिगम्बर परम्परा 9
समन्वय कैसे करें? 11
सम्पूर्ण जैन समाज की एकता की दृष्टि का विचार 12
पर्युषण में पठनीय आगम ग्रन्थ 13
कल्पसूत्र वाचन की परम्परा - श्वेताम्बर मूर्तिपूजक में 13
अन्तकृत् दशाङ्गसूत्र के वाचक की प्रथा - स्थानकवासी और तेरापंथी में 14
तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायों के वाचन - दिगम्बर परम्परा में 14
पर्युषण (संवत्सरी) के आवश्यक कर्तव्य 15
1. तप/संयम 15
2. सांवत्सरिक प्रतिक्रण/वार्षिक प्रायश्चित्त 15
3. कषायों का उपशमन/क्षमायाचना 15

प्राचीन आगम साहित्य पर्युषण पर्व का इतिहास

भारत पर्वों (त्योहारों) का देश है। वैसे तो प्रत्येक मास में कोई न कोई पर्व आता ही है, किन्तु वर्षा ऋतु में पर्वों की बहुलता है जैसे - गुरुपूर्णिमा, रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी, ऋषि पञ्चमी, गणेश चतुर्थी, अनन्त चतुर्दशी, श्राद्ध, नवरात्र, दशहरा, दीपावली आदि-आदि।

वर्षा ऋतु का जैन परम्परा का प्रसिद्ध पर्व पर्युषण है। जैन परम्परा में पर्वों को दो भागों में विभाजित किया गया है- एक लौकिक पर्व और दूसरा आध्यात्मिक पर्व। पर्युषण की गणना आध्यात्मिक पर्व के रूप में की गई है। इसे पर्वाधिराज कहा गया है।

आगमिक साहित्य में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर पर्युषण पर्व का इतिहास दो सहस्र वर्ष से भी अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। यद्यपि **प्राचीन आगम साहित्य में इसकी निश्चित तिथि एवं पर्व के दिनों की संख्या का उल्लेख नहीं मिलता है।** मात्र इतना ही उल्लेख मिलता है कि **भाद्र शुक्ला पञ्चमी का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये।**

वर्तमान में श्वेताम्बर परम्परा में और दिगम्बर परम्परा में यह पर्व अलग अलग दिन से मनाता है।

- मूर्तिपूजक सम्प्रदाय इसे भाद्र कृष्ण द्वादशी से भाद्र शुक्ल चतुर्थी तक तथा
- स्थानकवासी और तेरापंथी सम्प्रदाय इसे भाद्र कृष्ण त्रयोदशी से भाद्र-शुक्ल पञ्चमी तक
- दिगम्बर परम्परा में भाद्र शुक्ल पञ्चमी से भाद्र शुक्ल चतुर्दशी तक मनाया जाता है। उसमें इसे दशलक्षण पर्व के नाम से भी जाना जाता है।

इस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा में यह अष्ट दिवसीय और दिगम्बर परम्परा में दश दिवसीय पर्व है। इसके जितने प्राचीन एवं विस्तृत ऐतिहासिक उल्लेख श्वेताम्बर परम्परा में प्राप्त हैं, उतने दिगम्बर परम्परा में नहीं हैं। यद्यपि दस कल्पों (मुनि के विशिष्ट आचारों) का उल्लेख श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं में पाया जाता है। इन कल्पों में एक 'पज्जोसवणकप्प' (पर्युषण कल्प) भी है।

श्वेताम्बर परम्परा के बृहद्-कल्प भाष्य[1] में, दिगम्बर परम्परा के मूलाचार[2] में और यापनीय परम्परा के ग्रन्थ भगवती आराधना[3] में इन दस कल्पों का उल्लेख है। किन्तु इन ग्रन्थों की अपेक्षा भी अधिक प्राचीन श्वेताम्बर छेदसूत्र-आयारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) तथा निशीथ में 'पज्जोसवण' का उल्लेख है।

आयारदशा के आठवें कल्प का नाम ही पर्युषण कल्प है, जिसके आधार पर ही आगे चलकर कल्पसूत्र की रचना हुई है और जिसका आज तक पर्युषण के दिनों में वाचन होता है।

---

[1] आचेलकुद्देसिय सिज्जायर रायपिंड कितकम्मे।
वात जेट्ठ पडिक्कमणे मासं पज्जोसवण कप्पे।।
- बृहत्कल्पभाष्य, संपा0 – पुण्यविजयजी, प्रका0 – आत्मानंद जैन सभा, भावनगर, वि. सं. 1998, 6364।

[2] मूलाचार, वट्टकेराचार्य, प्रका0 – जैनमन्दिर शक्कर बाजार, इन्दौर की पत्रकार प्रति, समयसाराधिकार, 18।

[3] भगवती आराधना, शिवकोट्याचार्य, प्रका0 – सखाराम नेमिचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थामाला, शोलापुर 1935, 423।

पर्युषण (पज्जोसवण) शब्द का अर्थ

आयारदशा एवं निशीथ आदि आगम ग्रन्थों में पर्युषण शब्द के मूल प्राकृत रूप पज्जोसवण शब्द का प्रयोग भी अनेक अर्थों में हुआ है। निम्न पंक्तियों में हम उसके इन विभिन्न अर्थों पर विचार करेंगे।

- श्रमण के दस कल्पों में एक कल्प 'पज्जोसवणकल्प' है। पज्जोसवणकल्प का अर्थ है - वर्षावास में पालन करने योग्य आचार के विशेष नियम। आयारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) के पज्जोसवणाकप्प नामक अष्ठम अध्याय में साधु-साध्वियों के वर्षावास सम्बन्धी विशेष आचार-नियमों का उल्लेख है।[4] अतः इस सन्दर्भ में पज्जोसवण का अर्थ वर्षावास होता है।

- निशीथ में इस शब्द का प्रयोग एक दिन विशेष के अर्थ में हुआ है। उसमें उल्लेख है कि जो भिक्षु 'पज्जोसवणा' में किंचित्मात्र भी आहार करता है उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[5] इस सन्दर्भ में 'पज्जोसवण' शब्द समग्र वर्षावास का सूचक नहीं हो सकता है, क्योंकि यह असम्भव है कि सभी साधु-साध्वियों को चार मास निराहार रहने का आदेश दिया गया हो। अतः इस सम्बन्ध में पज्जोसवण शब्द किसी दिन विशेष का सूचक हो सकता है, समग्र वर्षाकाल का नहीं।

- पुनः यह भी कहा गया है कि जो भिक्षु अपर्युषणकाल में पर्युषण करता है और पर्युषण काल में पर्युषण नहीं करता है, वह दोशी है।[6] यद्यपि यहाँ 'पज्जोसवण' के एक दिन विशेष और वर्षावास दोनों ही अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। फिर भी इस प्रसङ्ग में उसका अर्थ एक दिन विशेष करना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

- निशीथ में पज्जोसवण का एक अर्थ वर्षावास के लिए स्थित होना भी है। उसमें यह कहा है कि जो भिक्षु वर्षावास के लिए स्थित (वासावासं पज्जासवियसि) होकर फिर ग्रामानुग्राम विचरण करता है, वह दोष का सेवन करता है।[7] अतः इस सन्दर्भ में पर्युषण का अर्थ वर्षावास बिताने हेतु किसी स्थान पर स्थित रहने का संकल्प कर लेना है अर्थात् अब मैं चार मास तक इसी स्थान पर रहूँगा ऐसा निश्चय कर लेना है। ऐसा लगता है कि **पर्युषण वर्षावास के लिए एक स्थान पर स्थिति हो जाने का एक दिन विशेष था-जिस दिन श्रमण संघ को उपवासपूर्वक केश-लोच, वार्षिक प्रतिक्रमण (सांवत्सरिक प्रतिक्रमण) और पज्जोसवणाकप्प का पाठ करना होता था।**

---

[4] दशाश्रुतस्कन्ध (आयारदशा), संपा0 – मुनि कन्हैयालाल, प्रका0 – अ. भा. श्वे. स्था. जैनशास्त्रोद्धार समिति, राजकोट, 1960 अध्याय 8।

[5] जे भिक्खु पज्जसवणाए इत्तिरियं पि आहारं आहारेति अहारेंते वा सातिज्जति। -निशीथसूत्रम्, संपा0 – मधुकर मुनि, प्रका0 – श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1978, 10/45।

[6] जे भिक्खू अपज्जोसवणाए पज्जोसवइ पज्जोसवंतं वा साइज्जइ। -निशथीसूत्रम, संपा0 – मधुकर मुनि, प्रका0 – श्री आगम प्रकाशन समिति, स्थावर, 1978, 10/43।

[7] जे भिक्खू वासावासं पज्जोसवियसि गामाणुगामं दुइज्जइ दुइज्जंत वा साइज्जइ-निशीथसूत्रम, संपा0 -मधुकर मुनि, प्रका0 – श्री आगम प्रकाशन समिति, स्थावर 1978, 10/41।

पर्युषण के पर्यायवाची अन्य नाम

'पर्युषण' के अनेक पर्यायवाची नामों का उल्लेख निशीथभाष्य (3139) तथा कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओं में उपलब्ध होता है। इसके कुछ प्रसिद्ध पर्यायवाची शब्द निम्न हैं -

- पज्जोसवणा (पर्युपशमना),
- परिवसणा (परिवसना),
- पज्जूसणो (पर्युषण),
- वासावास (वर्षावास)
- पागइया (प्राकृतिक),
- पढमसमोसरण (प्रथम समवसरण),
- परियायठवणा (पर्यायस्थापना),
- ठवणा (स्थापना),
- जट्ठोवग्ग (ज्येष्ठावग्रह)।

इसके अतिरिक्त वर्तमान में अष्टाह्निक पर्व या अठाई महोत्सव नाम भी प्रचलित है। इन पर्यायवाची नामों से हमें पर्युषण के वास्तविक स्वरूप का भी बोध हो जाता है।

पज्जोसवणा (पर्युशमना)

पज्जोसमणा शब्द की व्युत्पत्ति, परि+उपशमन से भी की जाती है। परि अर्थात् पूरी तरह से, उपशमन अर्थात् उपशान्त करना। पर्युषण पर्व में कषायों की अथवा राग-द्वेष की वृत्तियों को सम्पूर्ण रूप से क्षय करने हेतु साधना की जाती है, इसलिए उसे पज्जोसमणा (पर्युपशमना) कहा जाता है।

पज्जोसवणा/परिवसणा (परिवसना)

कुछ आचार्य पज्जोसवण की व्युत्पत्ति परि+उषण् से भी करते हैं। उषण् धातु वस् अर्थ में भी प्रयुक्त होती है - उषणं = वसनं। इस प्रकार पज्जोसवण का अर्थ होगा - परिवसना अर्थात् विशेष रूप से निवास करना। पर्युषण में एक स्थान पर चार मास के लिए मुनिगण स्थित रहते हैं, इसलिए इसे परिवसना कहा जाता है।[8] परिवसना का आध्यात्मिक अर्थ पूरी तरह आत्मा के निकट रहना भी है। 'परि' अर्थात् सर्व प्रकार से और 'वसना' अर्थात् रहना- इस प्रकार पूरी तरह से आत्मा में निवास करना या रहना परिवसना है, जो कि पर्युषण के आध्यात्मिक स्वरूप को स्पष्ट करता है। इस पर्व की साधना में साधक बहिर्मुखता का परित्याग कर तथा विषय-वासनाओं से मुँह मोड़कर आत्मसाधना में लीन रहता है।

पज्जूसण (पर्युषण)

'परि' उपसर्ग और 'उष्' धातु के योग से भी पर्युषण शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। उष् धातु दहन अर्थ की भी सूचक है। इस व्याख्या की दृष्टि से इसका अर्थ होता है सम्पूर्ण रूप से दग्ध करना अथवा जलना। इस पर्व में साधना एवं तपश्चर्या के द्वारा कर्म रूपी मल को अथवा कषाय

[8] परि-सामस्त्येन उषणं-वसनं पर्युषणा-कल्पसूत्र, सुविधिनी टीका, विनयविजयोपाध्याय, प्रका0 - हीरालाल हंसराज, जामनगर 1939, पृ. 172।

रूपी मल को दग्ध किया जाता है, इसलिए पज्जूसण (पर्युषण) आत्मा के कर्म एवं कषाय रूपी मलों को जला कर उसके शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने का पर्व है।

वासावास (वर्षावास)

'पर्युषणाकल्प' में पर्युषण शब्द का प्रयोग वर्षावास के अर्थ में भी हुआ है। वर्षाकाल में साधु-साध्वी एक स्थान पर स्थित रहकर पर्युषण कल्प का पालन करते हुए 'आत्मसाधना' करते हैं, इसलिए इसे वासावास (वर्षावास) भी कहा जाता है।

पागइया (प्राकृतिक)

पागइया का संस्कृत रूप प्राकृतिक होता है। प्राकृतिक शब्द स्वाभाविकता का सूचक है। विभाव अवस्था को छोड़कर स्वभाव अवस्था में परिरमण करना ही पर्युषण की साधना का मूल हार्द है। वह विकृति से प्रकृति में आना है, विभाव से स्वभाव में आना है, इसलिए उसे पागइया (प्राकृतिक) कहा गया है। काम, क्रोध, आदि विकृतियों (विकारों) का परित्याग कर क्षमा, शान्ति, सरलता आदि स्वाभाविक गुणों में रमण करना ही पर्युषण है।

पढमसमोसरण (प्रथम समवसरण)

प्राचीन परम्परा के अनुसार आषाढ़ शुक्ला पूर्णिका को संवत्सर पूर्ण होने के बाद श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से नववर्ष का प्रारम्भ होता है। वर्ष का प्रथम दिन होने से हमे पढमसमोसरण (प्रथम समवसरण) कहा गया है। दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार भगवान् महावीर के प्रथम समवसरण की रचना और उसकी वाक्धारा का प्रस्फुटन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को हुआ था। इसी दिन उन्होंने प्रथम उपदेश दिया था, इसलिए इसे प्रथम समवसरण कहा जाता है। वर्तमानकाल में भी चातुर्मास में स्थिर होने के पश्चात् चातुर्मासिक प्रवचनों का प्रारम्भ श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से ही माना जाता है। अतः इसे पढमसमोसरण कहा गया है। निशीथ में पर्युषण के लिए 'पढमसमोसरण' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसमें कहा गया है कि जो साधु प्रथम समवसरण अर्थात् श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के पश्चात् वस्त्र, पात्र आदि की याचना करता है वह दोष का सेवन करता है।[9]

परियायठवणा/परियायवत्थणा (पर्याय स्थापना)

पर्युषण पर्व में साधु-साध्वियों को उनके विगत वर्ष की संयम साधना में हुई स्खलनाओं का प्रायश्चित देकर उनकी दीक्षा पर्याय का पुनर्निर्धारण किया जाता है।

जैन परम्परा में प्रायश्चित के विविध रूपों में एक रूप छेद भी है। छेद का अर्थ होता है - दीक्षा पर्याय में कमी करना। अपराध एवं स्खलनाओं की गुरुता के आधार पर विविध काल की दीक्षा छेद किया जाता है और साधक की श्रमण संघ में ज्येष्ठता और कनिष्ठता का पुनर्निर्धारण होता है, अतः पर्युषण का एक पर्यायवाची नाम परियायठवणा (पर्याय स्थापना) भी कहा गया है। साधुओं की दीक्षा पर्याय की गणना भी पर्युषणों के आधार पर की जाती है। दीक्षा के बाद जिस साधु को जितने पर्युषण हुए हैं, उसको उतने वर्ष का दीक्षित माना जाता है। यद्यपि पर्यायठवणा के इस अर्थ की अपेक्षा उपर्युक्त अर्थ ही अधिक उचित है।

---

[9] निशीथसूत्रम्, संपा0 – मधुकर मुनि, प्रका0– श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1978, 10/46।

ठवणा (स्थापना)

चूँकि पर्युषण (चातुर्मास काल) की अवधि में साधक एक स्थान पर स्थित रहता है इसलिए इसे ठवणा (स्थापना) भी कहा जाता है। दूसरे पर्युषण (संवत्सरी) के दिन चातुर्मास की स्थापना होती है, इसलिए भी इसे ठवणा (स्थापना) कहा गया है।

जेट्ठोवग्ग (ज्येष्ठावग्रह)

अन्य ऋतुओं में साधु-साध्वी एक या दो मास से अधिक एक स्थान पर स्थित नहीं रहते हैं, किन्तु पर्युषण (वर्षाकाल) में चार मास तक एक ही स्थान पर स्थित रहते हैं, इसलिए जेट्ठोवग्ग (जेष्ठावग्रह) भी कहा गया है।

अष्टाह्निक पर्व

पर्युषण को अष्टाह्निक पर्व या अष्टाह्निक महोत्सव के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान में यह पर्व आठ दिनों तक मनाया जाता है इसलिए इसे अष्टाह्निक अर्थात् आठ दिनों का पर्व भी कहते हैं।

दशलक्षण पर्व

दिगम्बर परम्परा में इसका प्रसिद्ध नाम दशलक्षण पर्व है। दिगम्बर परम्परा में भाद्र शुक्ल पञ्चमी से भाद्र शुक्ल चतुर्दशी तक दश दिनों में, धर्म के दस लक्षणों की क्रमशः विशेष साधना की जाती है, अतः इसे दशलक्षण पर्व कहते हैं।

पर्युषण (संवत्सरी) पर्व कब और क्यों?

कल्पसूत्र एवं निशीथ का उल्लेख

प्राचीन ग्रन्थों विशेष रूप से कल्पसूत्र एवं निशीथ के देखने से यह स्पष्ट होता है कि पर्युषण मूलतः वर्षावास की स्थापना का पर्व था। यह वर्षावास की स्थापना के दिन मनाया जाता था।

उपवास, केशलोच, सांवत्सरिक प्रतिक्रमण एवं प्रायश्चित्त, क्षमायाचना (कषाय-उपशमन) और पज्जोसवणाकप्प (पर्युषण कल्प=कल्पसूत्र) का पारायण उस दिन के आवश्यक कर्तव्य थे। इस प्रकार पर्युषण एक दिवसीय पर्व था।

निशीथचूर्णि का उल्लेख

यद्यपि निशीथचूर्णि के अनुसार पर्युषण के अवसर पर तेला (अष्टम भक्त = तीन दिन का उपवास) करना आवश्यक था। उसमें स्पष्ट उल्लेख है कि 'पज्जोसवणाए अट्ठम न करेइ तो चउगुरु' अर्थात् जो साधु पर्युषण के अवसर पर तेला नहीं करता है तो उसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।[10] इसका अर्थ है कि पर्युषण की आराधना का प्रारम्भ उस दिन के पूर्व भी हो जाता था।

[10] निशीथचूर्णि, जिणदासगणि, प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1957, 3217।

जीवाभिगमसूत्र का उल्लेख

जीवाभिगमसूत्र के अनुसार पर्युषण के एक अठाई महोत्सव (अष्ट दिवसीय पर्व) के रूप में मनाया जाता था। उसमें उल्लेख है कि चातुर्मासिक पूर्णिमाओं एवं पर्युषण के अवसर पर देवतागण नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टाह्निक महोत्सव मनाया करते हैं।[11]

दिगम्बर परम्परा में आज भी आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन की पूर्णिमाओं (चातुर्मासिक पूर्णिमाओं) के पूर्व अष्टाह्निक पर्व मनाने की प्रथा है। लगभग आठवीं शताब्दी से दिगम्बर साहित्य में इसके उल्लेख मिलते हैं।

प्राचीन काल में पर्युषण आषाढ़ पूर्णिमा को मनाया जाता था और उसके साथ ही अष्टाह्निक महोत्सव भी होता था। हो सकता है कि बाद में जब पर्युषण भाद्र शुक्ल चतुर्थ/पञ्चमी को मनाया जाने लगा तो उसके साथ भी अष्ट-दिवस जुड़े रहे और इसप्रकार वह अष्ट दिवसीय पर्व बन गया।

वर्तमान में पर्युषण पर्व का सबसे महत्त्वपूर्ण संवत्सरी पर्व माना जाता है।

समवायाङ्गसूत्र का उल्लेख

समवायाङ्गसूत्र के अनुसार आषाढ़ पूर्णिमा से एक मास और बीस रात्रि पश्चात् भाद्रपद अर्थात् शुक्ल पञ्चमी को पर्युषणसांवत्सरिक प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये।

निशीथ का उल्लेख

निशीथ के अनुसार पचासवीं रात्रि का उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये।

उपवासपूर्वक सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना, श्रमण का आवश्यक कर्तव्य तो था ही, लेकिन निशीथचूर्णि में उदयन और चण्डप्रद्योत के आख्यान से ऐसा लगता है कि वह गृहस्थ के लिए भी अपरिहार्य था। लेकिन मूल प्रश्न यह है कि यह सांवत्सरिक पर्व कब किया जाय?

सांवत्सरिक पर्व के दिन समग्र वर्ष के अपराधों और भूलों का प्रतिक्रण करना होता है, अतः इसका समय वर्षान्त ही होना चाहिये। प्राचीन परम्परा के अनुसार आषाढ़ पूर्णिमा को वर्ष का अन्तिम दिन माना जाता था। श्रावण वदी प्रतिपदा से नव वर्ष का आरम्भ होता था।

भाद्र शुक्ल चतुर्थी या पञ्चमी को किसी भी परम्परा (शास्त्र) के अनुसार वर्ष का अन्त नहीं होता। अतः भाद्र शुक्ल पञ्चमी को सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की वर्तमान परम्परा समुचित प्रतीत नहीं होती।

प्राचीन आगमों में जो देवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण का उल्लेख है, उसको देखने से ऐसा लगता है कि उस अवधि के पूर्ण होने पर ही तत् सम्बन्धी प्रतिक्रमण (आलोचना) किया जाता था। जिस प्रकार **आज भी दिन की समाप्ति पर देवसिक, पक्ष की समाप्ति पर पाक्षिक, चातुर्मास की समाप्ति पर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया जाता है, उसी प्रकार वर्ष की समाप्ति पर सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाना चाहिये।**

[11] जीवाभिगम-नन्दीश्वर द्वीप वर्णन।

सांवत्सरिक प्रतिक्रमण तिथि भिन्न कैसे हो गई?

प्रश्न होता है कि सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की यह तिथि भिन्न कैसे हो गई? निशीथचूर्णि में जिनदासगणि ने स्पष्ट लिखा है कि पर्युषण पर्व पर वार्षिक आलोचना करनी चाहिये। (पज्जोसवनासु वरिसिया आलोयणा दायिवा)। चूँकि वर्ष की समाप्ति आषाढ़ पूर्णिमा को ही होती है, इसलिए आषाढ़ पूर्णिमा को पर्युषण अर्थात् सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिए।

निशीथभाष्य में स्पष्ट उल्लेख है- आषाढ़ पूर्णिमां को ही पर्युषण करना उत्सर्ग सिद्धान्त है।

सम्भवतः इस पक्ष के विरोध में समवायाङ्ग और आयारदशा (दशाश्रतस्कन्ध) के उस पाठ को प्रस्तुत किया जा सकता है जिसके अनुसार आषाढ़ पूर्णिमा के एक मास और बीस रात्रि के व्यतीत हो जाने पर पर्युषण करना चाहिए। चूँकि कल्पसूत्र के मूल पाठ में यह भी लिखा हुआ है कि श्रमण भगवान् महावीर ने आषाढ़ पूर्णिमा से एक मास और बीस रात्रि के व्यतीत हो जाने पर वर्षावास (पर्युषण) किया था उसी प्रकार गणधरों ने किया, स्थविरों ने किया और उसी प्रकार वर्तमान श्रमण निर्ग्रन्थ भी करते हैं।

निश्चित रूप से यह कथन भाद्र शुक्ल पञ्चमी को पर्युषण करने के पक्ष में सबसे बड़ा प्रमाण है। लेकिन हमें यह विचार करना होगा कि क्या **यह अपवाद मार्ग था या उत्सर्ग मार्ग था?**

यदि हम कल्पसूत्र के उसी पाठ को देखे तो, उसमें यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि इसके पूर्व तो पर्युषण एवम् सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना कल्पता है, किन्तु वर्षा ऋतु के एक मास और बीस रात्रि का अतिक्रमण करना नहीं कल्पता है- 'अंतरा वि य कप्पइ (पज्जोसवित्तए) नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए।'

निशीथचूर्णि और कल्पसूत्र की टीकाओं में भाद्र शुक्ल चतुर्थी को संवत्सरी का उल्लेख

निशीथचूर्णि में और कल्पसूत्र की टीकाओं में भाद्र शुक्ल चतुर्थी को पर्युषण या संवत्सरी करने का कालक आचार्य की कथा के साथ जो उल्लेख है वह भी इस बात की पुष्टि करता है कि भाद्र शुक्ल पञ्चमी के पूर्व तो पर्युषण किया जा सकता है किन्तु उस तिथि का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है।

निशीथचूर्णि में स्पष्ट लिखा है कि-

> 'आसाढ़ पूर्णिमाए पज्जोसेवन्ति एस उसग्गो सेस कालं पज्जोसेवन्ताणां अववातो। अवताते वि सवीससतिरातमासातो परेण अतिकम्मउण वट्टति सवीसतिराते मासे पुण्णे जति वासखेत्तं लब्भति तो रूक्ख हेट्ठावि पज्जोसवेयव्वं तं पुण्णिमाए पञ्चमीए, दसमीए, एवमाहि पव्वेसु पज्जुसवेयव्वं नो अपवेसु[12]

अर्थात् आषाढ़ पूर्णिमा को पर्युषण करना यह उत्सर्ग मार्ग है और अन्य समय में पर्युषण करना अपवाद मार्ग है। अपवाद मार्ग में भी एक मास और 20 दिन अर्थात् भाद्र शुक्ल पञ्चमी का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। यदि भाद्र शुक्ल पञ्चमी तक भी निवास के योग्य स्थान उपलब्ध न हो तो वृक्ष के

[12] निशीथचूर्णि, संपा0 – जिणदासगणि, प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1957, 3153।

नीचे पर्युषण कर लेना चाहिए। अपवाद मार्ग में भी पञ्चमी, दशमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा इन पर्व तिथियों में ही पर्युषण करना चाहिए, अन्य तिथियों में नहीं।

इस बात को लेकर निशीतभाष्य एवं चूर्णि में यह प्रश्न उठाया गया है कि **भाद्र शुक्ल चतुर्थी को अपर्व तिथि में पर्युषण क्यों किया जाता है?** इस सन्दर्भ में उसमें कालक आचार्य की कथा दी गयी है। कथा इस प्रकार है-

कालक आचार्य की कथा

कालक आचार्य विचरण करते हुए वर्षावास हेतु उज्जयिनी पहुँचे। किन्तु किन्हीं कारणों से राजा रुष्ट हो गया, अतः कालक आचार्य ने वहाँ से विहार करके प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया और वहाँ श्रमण संघ को आदेश भिजवाया कि जब तक हम नहीं पहुँचते हैं तब तक आप लोग पर्युषण न करें।

वहाँ का सातवाहन राजा श्रावक था, उसने कालक आचार्य को सम्मान के साथ नगर में प्रवेश कराया। प्रतिष्ठानपुर पहुँचकर आचार्य ने घोषणा की कि भाद्र शुक्ल पञ्चमी को पर्युषण करेंगे। यह सुनकर राजा ने निवेदन किया कि उस दिन नगर में इन्द्रमहोत्सव होगा। अतः आप भाद्र शुक्ल षष्ठि को पर्युषण कर लें।

किन्तु आचार्य ने कहा कि शास्त्र के अनुसार पञ्चमी का अतिक्रमण करना कल्प्य नहीं है। इस पर राजा ने कहा कि फिर आप भाद्र शुक्ल चतुर्थी को ही पर्युषण करें। आचार्य ने इस बात की स्वीकृति दे दी और श्रमण संघने भाद्र शुक्ल चतुर्थी को पर्युषण किया।[13]

यहाँ ऐसा लगता है कि आचार्य लगभग भाद्र कृष्ण पक्ष के अन्तिम दिनों में ही प्रतिष्ठान पर पहुंचे थे और भाद्र कृष्ण अमावस्या को पर्युषण करना सम्भव नहीं था। यद्यपि वे अमावस्या के पूर्व अवश्य ही प्रतिष्ठानपुर पहुँच चुके थे, क्योंकि निशीथचूर्णि में यह भी लिखा है कि राजा ने श्रावकों को आदेश दिया कि तुम लोग भाद्र कृष्ण अमावस्या को पाक्षिक उपवास करना और भाद्र शुक्ल प्रतिपदा को विविध पकवानों के साथ पारणे के लिए मुनिसंघ को आहार प्रदान करना।

चूँकि शास्त्र-आज्ञा के अनुसार सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के पूर्व तेला करना होता था, अतः भाद्र शुक्ल द्वितीया से चतुर्थी तक श्रमण संघ ने तेला किया। भाद्र शुक्ल पञ्चमी को पारणा किया। जनता ने आहार-दान कर श्रमण संघ की उपासना की। सी कारण महाराष्ट्र देश में भाद्र शुक्ल पञ्चमी श्रमण पूजा नाम से भी प्रचलित है।[14] यह भी सम्भव है कि इसी आधार पर हिन्दू परम्परा में ऋषि पञ्चमी का विकास हुआ है।

पर्युषण/दशलक्षण और दिगम्बर परम्परा

जैसा कि हमने पूर्व में निर्देश किया कि दिगम्बर ग्रन्थ मूलाचार के समयसाराधिकार की 118वीं गाथा में और यापनीय संघ के ग्रन्थ भगवती आराधना की 423वीं गाथा में दस कल्पों के प्रसङ्ग में पर्युषण कल्प का उल्लेख हुआ है। किन्तु ऐसा लगता है कि पर्युषण की मूलभूत अवधारणा से दक्षिण भारत में विकसित दिगम्बर परम्परा अपरिचित होती है। मूलाचार में मुनिलिङ्ग प्रसङ्ग में दस कल्प सम्बन्धी

[13] वही, 3153 (कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है)

[14] वही, 3153 (कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है)

जिस गाथा का उल्लेख हुआ है, उसे देखने से ज्ञात होता है कि अचेलकता की पुष्टि के लिए ही उस गाथा को बृहद्-कल्प-भाष्य से या अन्यत्र कहीं से ग्रहण किया गया है। इसकी परवर्ती गाथाओं में मयूरपिच्छि आदि का विवेचन है। यदि यह गाथा मूलाचार का अङ्ग होती तो उसमें इसके बाद क्रमशः दस कल्पों का विवेचन होना चाहिए था। जबकि इसकी पूर्ववर्ती गाथा अचेलकता का वर्णन करती है और परवर्ती गाथाएँ मयूरपिच्छिका का।

आश्चर्य यह भी है कि मूलाचार के टीकाकर आचार्य वसुनन्दी शय्यातर एवं पज्जोसवण नामक कल्पों के मूलभूत अर्थों से भी परिचित नहीं हैं। उन्होंने पज्जोसवण कल्प का अर्थ तीर्थङ्करों के पञ्च-कल्याणक स्थानों की पर्युपासना किया है (पज्जो-पर्या पर्युपासनं निषद्यकायाः पञ्च-कल्याण स्थानानां च सेवनं पर्येत्युच्यते श्रमणस्य श्रामणस्य वा कल्पो विकल्पः श्रमण कल्पः- मूलाचार, भाग 2, पृ. 105) पज्जोसवणा में आये हुए 'सवणा' का पाठान्तर 'समणा' कर 'श्रमण' अर्थ किया है जो कि यथार्थ नहीं है ऐसा लगता है कि दिगम्बर आचार्य पज्जोसवणाकप्प के मूल अर्थ से परिचित नहीं थे।

यापनीय शिवार्य की भगवती आराधना में भी इन्हीं दस कल्पों का विवेचन करने वाली गाथा है। किन्तु यहाँ पर यह गाथा ग्रन्थ का मूल अङ्ग है, क्योंकि आगे और पीछे की गाथाओं में भी कल्प का विवेचन है। उसके टीकाकार अपराजित सूरि ने इस गाथा की बहुत ही विस्तृत टीका लिखी है और प्रत्येक कल्प का वास्तविक अर्थ स्पष्ट किया है। यही नहीं, उन्होंने इस सम्बन्ध में आगमों (श्वेताम्बर आगमों) के सन्दर्भ भी प्रस्तुत किये हैं। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि यापनीय आचार्य आगमिक साहित्य को मान्य करते थे।

अपराजित सूरि ने पज्जोसवणाकप्प का अर्थ वर्षावास के लिए एक स्थान पर स्थित रहना ही किया जो श्वेताम्बर परम्परा से मूल अर्थ के अधिक निकट है। उन्होंने चातुर्मास का उत्सर्गकाल एक सौ बीस दिन बतलाया है, साथ ही यह भी बताया है कि यदि साधु आषाढ़ शुक्ल दशमी को चातुर्मास स्थल पर पहुँच गया है तो वह कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् तीस दिन और ठहर सकता है।

अपराजित सूरि के अनुसार अपवाद काल सौ दिनों का होता है। यहाँ श्वेताम्बर परम्परा से उनका भेद स्पष्ट होता है, क्योंकि श्वेताम्बर परम्परा में अपवाद काल भाद्र शुक्ल पंचमी से कार्तिक पूर्णिमा तक सत्तर दिन का ही है। इस प्रकार वे यह मानते है कि उत्सर्ग रूप में तो आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को और अपवादरूप में उसके बीस दिन पश्चात् तक भी पर्युषण अर्थात् वर्षावास की स्थापना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार दिगम्बर परम्परा के आगमिक आधारों पर आषाढ़ पूर्णिमा ही पर्युषण की उत्सर्ग तिथि ठहरती है।

आज भी दिगम्बर परम्परा में वर्षायोग की स्थापना के साथ अष्टाह्निक पर्व मनाने की जो प्रथा है वही पर्युषण के मूल हार्द के साथ उपयुक्त लगती है।

जहाँ तक दशलक्षण पर्व के इतिहास का प्रश्न है वह अधिक पुराना नहीं है। मुझे अब तक किसी प्राचीन ग्रन्थ में इसका उल्लेख देखने को नहीं मिला है। यद्यपि 17वीं शताब्दी की एक कृति व्रत तिथि निर्णय में यह उल्लेख अवश्य है कि दशलाक्षणिक व्रत में भाद्रपद की शुक्ल पञ्चमी को प्रोषध करना चाहिए।[15]

[15] दशलाक्षणिक व्रते भाद्रपद पासे शुक्ले श्री पंचमीदिने प्रोधः कार्यः। -- व्रततिथिनिर्णय, आचार्य सिंहनन्दी, प्रका0 – भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1950, पृ. 24।

इससे पर्व का भी मुख्य दिन यही प्रतीत होता है। 'क्षमाधर्म' आराधना का दिन होने से भी यह श्वेताम्बर परम्परा की संवत्सरी-पर्व की मूल भावना के अधिक निकट बैठता है। आशा है दिगम्बर परम्परा के विद्वान् इस पर अधिक प्रकाश डालेंगे।

इस प्रकार दिगम्बर परम्परा में भी पर्युषण का उत्सर्गकाल आषाढ़ पूर्णिमा और अपवादकाल भाद्र शुक्ल पञ्चमी माना जा सकता है।

समन्वय कैसे करें?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आषाढ़ पूर्णिमा पर्युषण (संवत्सरी) पर्व की अपर सीमा है और भाद्र शुक्ल पञ्चमी अपवाद सीमा है। इस प्रकार पर्युषण इन दोनों तिथियों के मध्य कभी भी पर्व तिथि में किया जा सकता है।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार आषाढ़ पूर्णिमा को केशलोच, उपवास एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कर वर्षावास की स्थापना कर लेनी चाहिये, यह उत्सर्ग मार्ग है।

यह भी स्पष्ट है कि बिना किसी विशेष कारण के अपवाद मार्ग का सेवन करना भी उचित नहीं है। प्राचीन युग में जब उपाश्रय नहीं थे तथा साधु साध्वियों के निमित्त बने उपाश्रयों में नहीं ठहरते थे, तब योग्य स्थान की प्राप्ति के अभाव में पर्युषण (वर्षावास की स्थापना) कर लेना सम्भव नहीं था। पुनः साधु-साध्वियों की संख्या अधिक होने से आवास प्राप्ति सम्बन्धी कठिनाई बराबर बनी रहती थी। अतः अपवाद के सेवन की सम्भावना अधिक बनी रहती थी।

स्वयं भगवान् महावीर को भी स्थान सम्बन्धी समस्या के कारण वर्षाकाल में विहार करना पड़ा था। निशीथचूर्णि की रचना तक अर्थात् सातवीं-आठवीं शताब्दी तक साधु-साध्वी स्थान की उपलब्धि होने पर अपनी एवं स्थानीय संघ की सुविधा के अनुरूप आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा से भाद्र शुक्ल पञ्चमी तक कभी भी पर्युषण कर लेते थे।

यद्यपि उस युग तक चैत्यवासी साधुओं ने महोत्सव के रूप में पर्व मनाना तथा गृहस्थों के समक्ष कल्पसूत्र का वाचन करना एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना आदि आरम्भ कर दिया था, किन्तु तब भी कुछ कठोर आचारवान साधु थे, जो इसे आगमानुकूल नहीं मानते थे। उन्हीं को लक्ष्य में रखकर चूर्णिकार ने कहा था - यद्यपि साधु को गृहस्थों के सम्मुख पर्युषण कल्प का वाचन नहीं करना चाहिए, किन्तु यदि पासत्था (चैत्यवासी-शिथिलाचारी साधु) पढ़ता है तो सुनने में कोई दोष नहीं है।

लगता है कि आठवीं शताब्दी के पश्चात् कभी संघ की एकरूपता को लक्ष्य में रखकर किसी प्रभावशाली आचार्य ने अपवादकाल की अन्तिम तिथि भाद्र शुक्ल चतुर्थी/पञ्चमी को पर्युषण (संवत्सरी) मनाने का आदेश दिया हो।

युवाचार्य मिश्रीमलजी म. ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। वे लिखते है कि 'सामान्यतः संवत्सर का अर्थ है- वर्ष। वर्ष के अन्तिम दिन किया जाने वाला कृत्य सांवत्सरिक कहलाता है।

वैसे जैन परम्परा के अनुसार आषाढ़ पूर्णिमा को संवत्सर समाप्त होता है, और श्रावण प्रतिपदा (श्रावण वदी 1) को नया संवत्सर प्रारम्भ होता है। इसलिए कुछ व्यक्ति यह तर्क उठाते हैं कि सांवत्सरिक प्रतिक्रमण आषाढ़ी पूर्णिमा को ही करना चाहिए। यही वर्ष का अन्तिम दिन है। भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी

को जैन ज्योतिष की दृष्टि से तथा अन्य किसी भी दृष्टि से वर्ष का न अन्तिम दिन है और न प्रारम्भिक दिन।

इसका समाधान यह है कि यद्यपि आषाढ़ पूर्णिमा संवत्सर का अन्तिम दिन माना गया है, किन्तु शास्त्र में जो पर्युषण का विधान है वह आषाढ़ पूर्णिमा से पचास दिन के भीतर किसी पर्व तिथि अर्थात् पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा, अमावस्या आदि में मनाने का है। निर्दोष स्थान आदि की प्राप्ति न हो तो भी आषाढ़ पूर्णिमा से एक मास और बीस दिन बीत जाने पर तो अवश्य ही मनाना होता है। इस दृष्टि से देखें तो आषाढ़ पूर्णिमा से पचासवाँ दिन एक निश्चित दिन है, इस दिन पर्युषण निश्चित रूप से करना ही होता है। इस दिन का उल्लङ्घन करने पर प्रायश्चित्त आता है, अर्थात् अन्य सभी विकल्प के दिनों को पार कर लेने के बाद पचासवाँ दिन निर्विकल्पक दिन है, अतः इस दिन का सबसे अधिक महत्त्व है। यह सीमा का वह अन्तिम पत्थर है जिसका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता।

आचार्यों ने इसी दिन को सांवत्सरिक प्रतिक्रमण का दिन स्वीकार कर दूरदर्शिता का परिचय दिया है, साथ ही समस्त श्रमण संघ को एकसूत्र में बाँधे रखने का भी एक सुन्दर मार्ग दिखाया है। बीच के दिन तो अपनी-अपनी सुविधा के दिन हो सकते हैं, जिस दिन जहाँ पर जिसको स्थान आदि की सुविधा मिले वह उसी पर्व तिथि (पञ्चमी-दशमी-पूर्णिमा आदि) को पर्युषण कर ले तो इससे सङ्घ में बहुरूपता आ जाती है, विभिन्नता आती है, फिर मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना वाली स्थिति आ सकती है, इसलिए भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी अर्थात् आषाढ़ पूर्णिमा से पचासवें दिन पर्युषण करने अर्थात् सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने का निश्चित विधान है, जो सङ्घ की एकता और श्रमण सङ्घ की अनुशासनबद्धता के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है'।[16]

सम्पूर्ण जैन समाज की एकता की दृष्टि का विचार

यदि सम्पूर्ण जैन समाज की एकता की दृष्टि से विचार करें तो आज साधु-साध्वी वर्ग को स्थान उपलब्ध होने में सामान्यतया कोई कठिनाई नहीं होती है। **आज सभी परम्परा के साधु-साध्वी आषाढ़ पूर्णिमा को वर्षावास की स्थापना कर लेते है और जब अपवाद का कोई कारण नहीं है तो फिर अपवाद का सेवन क्यों किया जाये?**

दूसरे भाद्रपद शुक्ल पक्ष में पर्युषण/संवत्सरी करने से जो अप्काय और त्रस की विराधना से बचने के लिए संवत्सरी के पूर्व केशलोच का विधान था उसका कोई मूल उद्देश्य हल नहीं होता है। वर्षा में बालों के भीगने से अप्काय की विराधना और त्रस जीवों के उत्पत्ति की सम्भावना रहती है। अतः उत्सर्ग मार्ग के रूप आषाढ़ पूर्णिमा को संवत्सरी/पर्युषण करना ही उपयुक्त है, इसमें आगम से कोई विरोध भी नहीं है और समग्र जैन समाज की एकता भी बन सकती है। साथ ही दो श्रावण या दो भाद्रपद का विवाद भी स्वाभाविक रूप से हल हो जाता है।

यदि अपवाद मार्ग को ही स्वीकार करना है तो फिर अपवाद मार्ग के अन्तिम दिन भाद्र शुक्ल पञ्चमी को स्वीकार किया जा सकता है। इस दिन को स्थानकवासी और तेरापंथी समाज तो मानता ही है, मूर्तिपूजक समाज को भी इसमें आगमिक दृष्टि से कोई बाधा नहीं आती है, क्योंकि कालकाचार्य की भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी की व्यवस्था अपवादिक व्यवस्था थी और एक नगर विशेष की परिस्थिति विशेष

[16] पर्युषण पर्व प्रवचन, संपा0 – श्रीचन्द सुराना, प्रका0 – मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर, 1976, पृ. 37-38।

पर आधारित थी। आज चूँकि उसका कोई कारण नहीं, पुनः स्वयं निशीथचूर्णि के अनुसार चतुर्थी अपर्व तिथि है; अतः आषाढ पूर्णिमा और भाद्र शुक्ल पञ्चमी में से किसी एक दिन को पर्व का मूल दिन चुन लिया जाये। शेष दिन उसके आगे हो या पीछे, यह अधिक महत्त्व नहीं रखता है–सुविधा की दृष्टि से उन पर एक आम सहमति बनाई जा सकती है।

पर्युषण में पठनीय आगम ग्रन्थ

कल्पसूत्र वाचन की परम्परा - श्वेताम्बर मूर्तिपूजक में

वर्तमान में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में पर्युषण में कल्पसूत्र वाचन की परम्परा है।

पहले पर्युषण (संवत्सरी) के दिन साधुगण रात्रि के प्रथम प्रहर में दशाश्रुतस्कन्ध (आयारदशा) के आठवें अध्ययन पर्युषण कल्प का पारायण करते थे, जिसे पाश्चात्य विद्वानों ने वर्तमान कल्पसूत्र का प्रचीनतम अंश बताया है।

कालान्तर में इस अध्याय को उससे अलग कर तथा इसके साथ महावीर, पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि और ऋषभ के जीवनवृत्तों एवं अन्य तीर्थंकरों के सामान्य उल्लेखों तथा स्थविरावली (महावीर से परवर्ती आचार्य परम्परा) जो जोड़कर कल्पसूत्र नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की गई, जो कि लगभग पन्द्रह सौ वर्षों से पर्युषण पर्व में पढ़ा जाता है।

पर्युषण के अवसर पर जनसाधारण के समक्ष कल्पसूत्र पढ़ने की परम्परा का प्रारम्भ वीर निर्वाण के 980 या 993 वर्ष के बाद आनन्दपुर नगर में ध्रुवसेन राजा के समय हुआ था। जनसाधारण के समक्ष पढ़ने के उद्देश्य से ही इसमें तीर्थङ्करों के जीवन चरित्रों का समावेश किया गया था क्योंकि उस समय तक हिन्दुओं और बौद्धों में भी अपने उपास्य देवों के जीवन चरित्रों को जनसाधारण के समक्ष पढ़ने की प्रथा प्रारम्भ हो चुकी थी और जैन आचार्यों के लिए भी यह आवश्यक हो गया था कि वे भी अपने उपास्य तीर्थङ्करों का जीवनवृत्त अपने अनुयायियों को बतायें।

ध्रुवसेन के पुत्रशोक को दूर करने का कथानक इस परम्परा के प्रारम्भ होने का क निमित्त माना जा सकता है, किन्तु उसका मूल कारण तो उपर्युक्त तत्कालीन परिस्थिति ही थी। यद्यपि इसके पूर्व भी 'पर्युषण-कल्प' की आवृत्ति पर्युषण (संवत्सरी) के दिन मुनि वर्ग सामूहिक रूप से करता था, तथापि निशीथ के अनुसार उसका गृहस्थों एवं अन्य तैर्थिकों के साथ पर्युषण करने का चातुर्मासिक प्रायश्चित (अर्थात् 120 दिन के उपवास का दण्ड) बताया गया है- जे भिक्खू अण्णउत्थिएणवा गारत्थिएणवा पज्जोसवेइ पज्जोसवंतं वा साइज्जइ–निशीथ (10/47)। सम्भवतः यह निषेध इसलिए किया गया था कि पर्युषण-कल्प का वाचन गृहस्थों एवं अन्य तैर्थिकों के समक्ष करने पर उन्हें मुनि के वर्षावास सम्बन्धी आचार नियमों की जानकारी हो जायेगी और किसी को उसके विपरीत आचरण करते देखकर वे उसकी आलोचना करेंगे, इससे सङ्घ की बदनामी होगी। यह भी सम्भव है निशीथ की रचना के समय तक मुनि जीवन में शिथिलाचार प्रविष्ट हो गया हो, अतः जनसाधारण के समक्ष मुनि आचार का विवेचन करना उचित नहीं समझा जाता हो।

इस निषेध का एक तात्पर्य यह भी हो सकता है कि पर्युषण-कल्प की आवृत्ति के साथ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के अवसर पर साधुओं को उनके विगत वर्ष के अतिचारों या दोषों का प्रायश्चित भी

दिया जाता रहा हो। अन्य तैर्थिकों या गृहस्थों के उपस्थिति रहने पर प्रथम तो साधु अपने अपराधों या दोषों को स्वीकार ही नहीं करेंगे, साथ ही सबके समक्ष दण्ड दिये जाने पर उनकी बदनामी होगी। अतः सांवत्सरिक प्रतिक्रमण और पर्युषण-कल्प का जनता के समक्ष वाचन पहले निषिद्ध था। किन्तु कालान्तर में उस समाचारी (आचार सम्बन्धी भाग) को गौण करके तथा उसमें कथा भाग, इतिहास को जोड़कर गृहस्थों के समक्ष उसके पठन की परम्परा प्रचलित हो गई, जो कि आज 1500 वर्षों से निरन्तर प्रचलित है।

अन्तकृत् दशाङ्गसूत्र के वाचक की प्रथा - स्थानकवासी और तेरापंथी में

श्वेताम्बर समाज की स्थानकवासी और तेरापंथी परम्पराओं में कल्पसूत्र के स्थान पर अन्तकृत् दशाङ्गसूत्र के वाचक की प्रथा है। इसका प्रारम्भ स्थानकवासी परम्परा के उद्भव के साथ ही हुआ है। अतः यह प्रथा 400 वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। यद्यपि मूल कल्पसूत्र में ऐसा कुछ नहीं है जो स्थानकवासी परम्परा के प्रतिकूल हो, फिर भी इस नवीन प्रथा का प्रारम्भ क्यों हुआ यह विचारणीय है।

प्रथम कारण तो यह हो सकता है कि श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा से अपनी भिन्नता रखने के लिए इसका वाचन प्रारम्भ किया गया हो।

दूसरे इसे इसलिए चुना गया हो कि पर्युषण के आठ दिन माने गये थे और यह अष्टम अङ्ग था तथा इसमें आठ ही वर्ग थे।

तीसरे यह कि कल्पसूत्र की अपेक्षा भी इसमें तप–त्याग की विस्तृत चर्चा थी, जो आडम्बर रहित तप-त्यागमय आचार प्रधान स्थानकवासी परम्परा के लिए अधिक अनुकूल थी।

चौथे कल्पसूत्र का जिन टीकाओं के साथ वाचन हो रहा था, उनमें मूर्तिपूजा आदि सम्बन्धी ऐसे प्रसङ्ग थे जिनका वाचन करना उनके लिए सम्भव नहीं था। अतः उन्हें एक नये आगम का चुनाव ही अधिक उपयुक्त लगा हो। अन्तकृत् दशाङ्गसूत्र में प्रथम पाँच वर्गों में भगवान् अरिष्टनेमि काल के 41 त्यागी पुरुषों एवं 10 महिलाओं का जीवनवृत्त है। शेष तीन वर्गों में महावीरकालीन 16 त्यागी पुरुषों एवं 23 महिलाओं का जीवनवृत्त है, जिन्होंने साधना के उत्तुङ्ग शिखरों पर चढ़कर तथा देहभाव से ऊपर उठकर कठोर तपश्चर्याएँ कीं और अपने अन्तिम समय में कैवल्य को प्राप्त कर मोक्षरूपी लक्ष्मी का वरण किया।

तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायों के वाचन - दिगम्बर परम्परा में

दिगम्बर परम्परा में इन दशलक्षणपर्व के दिनों में तत्त्वार्थसूत्र के दस अध्यायों के वाचन की परम्परा रही है, जो दिन की संख्या के साथ सङ्गतिपूर्ण है। तत्त्वार्थसूत्र जैन तत्त्वज्ञान का साररूप ग्रन्थ होने से पर्व के दिन में इसका वाचन उपयुक्त ही है। इसी प्रकार दस धर्मों पर प्रवचन भी नैतिक चेतना के जागरण की दृष्टि से उचित है।

यद्यपि विभिन्न परम्पराओं में पर्युषण में पठनीय ग्रन्थों में से किसी का भी महत्त्व कम नहीं है, किन्तु जैन सङ्घ की एकात्मकता की दृष्टि से किसी समणसुत्तं जैसे सर्वमान ग्रन्थ के वाचन की परम्परा भी प्रारम्भ की जा सकती है।

पर्युषण (संवत्सरी) के आवश्यक कर्तव्य

1. तप/संयम

निशीथ के अनुसार पर्युषण के दिन कणमात्र भी आहार करना वर्जित था।[17] निशीथभाष्य में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि जो साधु पक्खी को उपवास, चौमासी को बेला और पज्जोसवण (संवत्सरी) को तेला नहीं करता है, उसे क्रमशः मासगुरु, चतुर्लघु ओर चतुर्गुरु का प्रायश्चित्त आता है। यद्यपि चूर्णि में यह मान लिया गया है कि किसी परिस्थिति विशेष के कारण पर्युषण में आहार करता हुआ भी शुद्ध है।[18] साधु-साध्वी वर्ग के साथ ही श्रावक वर्ग में पर्युषण (संवत्सरी) में उपवास करने की परम्परा थी। निशीथचूर्णि में चण्डप्रद्योत और उदयन की कथा से यह बात सिद्ध होती है (निशीथचूर्णि, भाग-3, पृ. 147)। इस प्रकार पर्युषण पर्व में तप साधना एक आवश्यक कर्तव्य है। तप का मूल उद्देश्य अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना है और पर्युषण संयम-साधना का पर्व है।

2. सांवत्सरिक प्रतिक्रण/वार्षिक प्रायश्चित्त

पर्युषण का दूसरा महत्वपूर्ण कर्तव्य सांवत्सरिक प्रतिक्रमण। वार्षिक प्रायश्चित्त है। विगत वर्ष में हुए व्रतभंग, दोषसेवन, अनाचार या दुराचारों का अन्तर्निरीक्षण कर, उनकी आलोचना कर, उनके लिए प्रायश्चित्त ग्रहण करना यह पर्युषण का दूसरा आवश्यक कर्तव्य है। श्रमण, श्रमणी, श्रावक एवं श्राविका सभी के लिए यह आवश्यक है।

3. कषायों का उपशमन/क्षमायाचना

जैन साधना निर्ग्रन्थ भाव की साधना है, जीवन से काम-क्रोध की गाँठों का विसर्जन है, राग-द्वेष से ऊपर उठना है। चाहे श्रावकत्व हो या श्रमणत्व इसी बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति की क्रोध, अहंकार, कपट और लोभ की वृत्तियाँ शिथिल हों। मन तृष्णा एवं आसक्ति के तनावों से मुक्त हो। पर्युषण इन्हीं की साधना का पर्व है। कल्पसूत्र में कहा गया है- यदि क्लेश उत्पन्न हुआ हो तो साधु क्षमायाचना कर ले। क्षमायाचना करना, क्षमा प्रदान करना, उपशम धारण करना और करवाना साधु का आवश्यक कर्तव्य है, क्योंकि जो उपशम (शान्ति) धारण करता है, वह (भगवान् की आज्ञा का) आराधक होता है, जो ऐसा नहीं करता है, वह विराधक होता है, क्योंकिं उपशमन ही श्रमण जीवन का सार है (उवसम सारं खु सामण्णं)।[19] निशीथचूर्णि में कहा गया है कि यदि अन्य समय में हुए क्लेश कटुता की उस समय क्षमायाचना न की गई हो तो पर्युषण में अवश्य कर लेवें।[20]

इस प्रकार पर्युषण तप, संयम की साधना के साथ कषायों के उपशमन का पर्व है। क्षमायाचना एक ऐसा उपाय है, जो कटुता के मल को धोकर हृदय को निर्मल बना देता है।

प्रो. सागरमल जैन १९९८ - जैन विद्या के आयाम खंड ५

---

[17] जे भिक्खू पज्जसवणाए इत्तिरियं पि आहारं आहारेति आहारेन्तं वा सातिज्जति। --निशिथसूत्रम्, संपा0 – मधुकर मुनि, प्रका0 – श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 1978, 10/45।

[18] पंज्जोसवणआए जइ अट्ठमं न करेइ तो चउगुरुं, कारणे हिं पज्जोसवणाए आहारेंतो सुद्धो। -- निशिथचूर्णि, संपा0 – जिनदासगणि, प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1975, 3217।

[19] कल्पसूत्र, 286।

[20] कसाय कडत्ताए न खामितं तो-पज्जोसवणा सु अवस्सं विओसवेयव्वं। --निशीथचूर्णि, जिनदासगणि, प्रका0 – सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 1957, 3179।